● प्रकाशक :
संकीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर (झूसी)
प्रयाग

卐

● मुद्रक :
वंशीधर शर्मा
भागवत प्रेस
८५२ मुट्ठीगंज, प्रयाग

संस्मरण

[धर्म और राजनीति]

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः।
परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥*

(श्री भा० ८ स्क० ७ अ० ४४ श्लोक)

छप्पय

जन साधारन दुःख परे निज होहिँ दुरित अति।
किन्तु साधु पर दुःख देखि अति द्रवहि तिनहि चित ॥
जे परदुखमहँ दुखी सन्त वे ई कहलावें।
निज स्वारथकूँ त्यागि लोकहित प्रान गवावें ॥
ऋषि मुनि सत्ता तें विरत, द्रव्य मोह ममता तजहिँ।
परमारथ के हेतु परि, सहैं दुख नित प्रभु भजहिँ ॥

सब मनुष्य सभी कार्य करने की क्षमता नहीं रखते। कुछ लोग विद्योपजीवी होते हैं, सब श्रमोपजीवी, कुछ वाणिज्योपजीवी और कुछ सेवोपजीवी होते हैं। यह समाज देह के समान है। जैसे एक ही देह के पृथक् पृथक् अंग होते हैं। मुख का कार्य बोलना और भोजन करना है, हाथों का काम उठाना धरना है,

---

* साधु पुरुष प्रायः लोगो के संताप से संतप्त हुआ करते हैं। दूसरो के दुःखो से दुखी होना, यही उन अखिलात्मा परम पुरुष परमात्मा का परम आराधन है।

पैरों का कार्य चलना है, मल मूत्रेन्द्रिय का काज मल-मूत्र विसर्जन करना है। किन्तु हैं तो ये सब एक ही शरीर के अंग। मल मूत्रेन्द्रिय को कोई शरीर से पृथक् तो कर नहीं देता। शरीर में रह कर सभी अंग अपना-अपना पृथक्-पृथक् कार्य करते हुए एक ही देह के सहयोगी बने हुए हैं। इसी प्रकार समाज में ऊँचे नीचे सभी वर्ग के लोग होते हैं। आर्य सनातन वर्णाश्रम धर्मियों की जो वर्णाश्रम धर्म प्रणाली है वह इसी आधार पर है। हमारे यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरुषार्थ माने हैं। इनमें धर्म, अर्थ और काम ये तीन तो पुरुषार्थ हैं और मोक्ष परम पुरुषार्थ है। अतः मोक्ष के अधिकारी बहुत कम होते हैं। वेदाध्ययन में निरत ब्राह्मण वर्ण वालों का कार्य यही है, कि वे धर्मपूर्वक मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते रहें। क्योंकि ब्राह्मण का मुख्य धर्म क्षमा है, वह सब जीवों को अभय प्रदान करता हुआ मोक्ष मार्ग में निरत रहता है। क्षत्रिय का मुख्य धर्म तेज है। अपने तेज से दीन दुखियों की–आश्रितों की–दूसरों के द्वारा सताये हुए दुखियों की रक्षा करना यह उनका मुख्य धर्म है। जो समाज का अपने प्रबल पुरुषार्थ से इतना भारी कार्य करेंगे, उसे कामोपभोग की कुछ विशेष छूट देनी ही चाहिये। उसे ठाट-बाट से रहकर धर्मपूर्वक कामोपभोग करना चाहिये। अतः क्षत्रिय, काम प्रधान वर्ण है। वैश्य का मुख्य धर्म है समाज के लिये वस्तुओं का सचय करना, क्रय-विक्रय द्वारा समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करना। यह सब अर्थ द्वारा ही संभव है, अतः वैश्य, अर्थ प्रधान वर्ण है। उसके लिये बताया है, चाहे जितना अपने पास धन संचय हो जाय, किन्तु कभी उससे सन्तुष्ट न हो। उससे भी अधिक धन संचय करने का प्रयत्न करता रहे (अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्य प्रकृतयस्त्विमाः) इसी प्रकार शूद्र, धर्म

प्रधान वर्ण है। यदि धर्म का बंधन न हो, तो कौन अपने समस्त सुखों को तिलांजलि देकर दूसरों की सेवा में सदा जुटा रहेगा। शूद्र न अच्छा वस्त्र पहिनता है, न अच्छा भोजन ही करता है, जैसा-तैसा मिल गया उसी को पहिन लिया, रूखा-सूखा जो मिला उसी को खाकर सदा सेवा में जुटा रहता है। उसके परिवार का उत्तरदायित्व भी दूसरों के ऊपर है। इस प्रकार मोक्षप्राप्ति तो सबका अन्तिम लक्ष्य है। धर्म का पालन सबके लिये परमावश्यक है। धर्म ही समाज को धारण किये हुए है। धर्मपूर्वक अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना। यह सब वर्णों का परम कर्तव्य है। जैसे ब्राह्मण का लक्ष्य तो मोक्ष है, किन्तु मोक्ष प्राप्ति का साधन धर्म है। वह धर्मपूर्वक मोक्षमार्ग की ओर बढ़ता जाय। काम और अर्थ से विरत रहे। क्षत्रिय का लक्ष्य तो मोक्ष है, किन्तु वह धर्मपूर्वक कामोपभोग भी करता रहे। वैश्य का लक्ष्य तो मोक्ष है, किन्तु वह धर्मपूर्वक अर्थ संचय में ही लगा रहे। कामोपभोग उसके लिये गौण विषय है। इसी प्रकार शूद्र का भी लक्ष्य तो मोक्ष ही है, किन्तु उसका प्रधान धर्म है स्वधर्म पालन। उसके लिये कामोपभोग, अर्थ संचय, गौण हैं। मुख्य धर्म तो उसका द्विजातियों की सेवा करना ही है। उनके लिये अर्थ-संग्रह निषेध है, वे तो द्विजातियों की,गौओं की और देवताओं की केवल सेवा में ही निरत रहें, यही उनका परम धर्म है (शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया तत्र लब्धेन सन्तोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः) वैश्य और शूद्र तो कर देने वाली प्रजा हैं। क्षत्रिय कर लेने वाले और ब्राह्मण कर मुक्त,अतः मुख्यतया ब्राह्मण और क्षत्रिय ये ही दो प्रजा के पालक थे। ब्राह्मण तो धर्म प्रधान और क्षत्रिय राजनीति प्रधान थे। जो कामोपभोग और अर्थ-संचय में फँसा रहेगा, वह विशुद्ध धर्म का उपार्जन नहीं कर सकता। अतः ब्राह्मण कभी

राजनीति मे नहीं पडते। वे राजाओ को–क्षत्रियों को–उपदेश, सम्मति मत्र तो देते थे, स्वय कभी कोई राज्याधिकार ग्रहण नहीं करते। जब राजागण–क्षत्रिय लोग–मर्यादा का उल्लङ्घन करने लगते थे, तब कभी कभी विवश होकर ब्राह्मणों को भी राजनीति में आना पडता था। जैसे परशुरामजी ने हाथ में शस्त्र लेकर–धर्मद्रोही क्षत्रियो का–सहार किया। वेन राजा के अत्याचारों से ऊबकर ब्राह्मणों ने उसे हुङ्कार से मार डाला। इतना सब होने पर भी उन्होंने कभी स्वय पद ग्रहण नहीं किया। परशुरामजी ने यद्यपि इक्कीस बार पृथ्वी को नि क्षत्रिय कर डाला, किन्तु समस्त पृथ्वी को जीतकर–अपने अधीन करके–भी वे राजा नहीं बने। समस्त पृथ्वी को महर्षि कश्यप को दान देकर स्वय तपस्या करने महेन्द्र पर्वत पर चले गये। कश्यपजी ने भी दान म पायी समस्त पृथ्वी को क्षत्रियो को बॉट दिया। इसी प्रकार ऋषिगण वेन को मारकर तपस्या करने चले गये। वे राजा नहीं बने। राजा तो उन्होंने वेन के पुत्र पृथु को ही बनाया। हाँ ब्राह्मणों ने राजाओं के यहाँ एक पद अवश्य ग्रहण किया वह था, पुरोहिती का पद। किन्तु इस निन्दनीय ही पद बताया है। पुरोहिती को ब्राह्मण की अत्यन्त ही निन्दनीय वृत्ति कहा है। ब्राह्मण की सर्वोत्तम वृत्ति त यही है, कि एक भी पंसे का समह न करके खेतों में कट जाने पर पड़े हुए अन्न का–या अन्न हाट उठ जाने पर पड़े हुए दानों को बीनकर उसी से निर्वाह करे। जो ब्राह्मण भोगों की इच्छा रखते थे, वे ही पुरोहिती की निन्दनीय वृत्ति को स्वीकार करते थे।*

---

* अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनम्
तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ।
कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः
पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥
(श्री० भा० ६ स्क० ७ अ० ३६ श्लोक)

ब्राह्मण को राज्याधिकारो से सदा विरत रहकर कंदमूल फल खाकर-आश्रमों में निवास करके-परमार्थ चिन्तन ही करना चाहिये। राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति तो दूर रही, उनके लिये राजा का अन्न तक खाना निषेध है। क्योंकि राजा की आय बल-पूर्वक प्रजा से कर लेकर, अपराधियों से दंड मे धन लेकर ही होती है। इस धन को जो खायगा उसके संस्कार भी वैसे ही बनेंगे। अधिकार ग्रहण करने मे कुछ न कुछ भोगेच्छा रहती ही है, फिर चाहे वह कितना भी निष्काम भाव से क्यों न किया जाय। भोगेच्छा रखकर जो धन संचय किया जाता है, तो उसमे अर्थ-अनर्थ का ध्यान रहता नहीं। वैसे धन को खाकर ब्राह्मण की बुद्धि सात्त्विकी कैसे रह सकेगी। वैसे ब्राह्मण अपनी तपस्या के प्रभाव से इतना बुद्धिमान होता है कि वह चाहे तो राज्य का सचालन कर सकता है, समस्त सेना का सचालन कर सकता है, न्यायाधीश बनकर दण्ड विधान कर सकता है और तो क्या वह समस्त लोकों का शासन चला सकता है।* किन्तु वह इन झंझटो में फँसता नहीं, क्योंकि काजर की कोठरी में कैसा भी सुजान जाय, एक आध बूँद काजर को कितना बचे उसके लग ही जायगी। महर्षि द्रोणाचार्य कंदमूल फलों पर निर्वाह करके ब्राह्मण वृत्ति का पालन करते थे। किन्तु पुत्र के मोह के कारण उन्हें दूध की इच्छा हुई। अपने बालसखा राजा द्रुपद से दूध की गौ माँगने गये। राजा ने तिरस्कार कर दिया। ब्राह्मण का मुख्य धर्म क्षमा है, वे उसके अपमान को सह लेते-उसे क्षमा कर देते-

---

* सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥
(श्री भा० ४ स्क० २२ अ० ४५ श्लोक)

तो उनका ब्रह्मतेज–ब्राह्मणपना–बना रहता। किन्तु उन्होंने राजा को क्षमा नहीं किया, उससे बदला लेने की इच्छा की। इससे वे ब्राह्मणपने से च्युत हो गये। उन्हें क्षत्रियों के यहाँ वेतन भोगी अध्यापक बनना पड़ा। शिष्यों के द्वारा द्रुपद को पराजित करके उससे आधा राज्य ले लिया और अन्त में उन्हें महाभारत युद्ध में सेनापति का कार्य करना पड़ा–अर्थ का दास होना पड़ा–जो ब्राह्मण के लिये परमगर्ह्य कार्य है।

यद्यपि धर्महीन राजनीति परम निन्दनीय है और धर्म का उपदेष्टा ब्राह्मण ही होता है, तथापि वह उपदेश ही करे उसमें फँसे नहीं। क्षत्रियों के अपराधों को सह ले उनका सामना न करे। यदि उसमें वास्तव में ब्रह्मतेज होगा, तो बलप्रयोग करने वाला उसके तेज के ही कारण परास्त हो जायगा। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ और जमदग्नि का उदाहरण प्रत्यक्ष ही है। राजा विश्वामित्र तथा राजा कार्तवीर्य अर्जुन दोनो ही दोनों ऋषियों के यहाँ से बलपूर्वक–मना करने पर भी–उनकी गौओं को खोल ले गये। ऋषियों ने उनका सामना नहीं किया, फिर भी दोनों को परास्त होना पड़ा।

जब तक इस देश में वर्णाश्रम धर्म का पालन होता रहा, तब तक ब्राह्मण शासन से दूर रहकर केवल क्षत्रियों को धर्मयुक्त राजनीति का उपदेश ही देते रहे, वे स्वय राजनीति में कभी नहीं फँसे। जब वर्णाश्रम धर्म शिथिल पड़ गया, राजाओं के यहाँ ब्राह्मण लोग पुरोहिती ही नहीं, वेतनभोगी मन्त्रीपने का भी कार्य करने लगे तभी से ब्राह्मण प्रत्यक्ष राजनीति में भी भाग लेने लगे। परिस्थितियाँ जब व्यक्ति को विवश कर देती हैं, तो कभी-कभी मनुष्य को न करने योग्य कार्य भी करने पड़ते हैं।

जब तक इस देश में यवनों ने आक्रमण नहीं किया था, तब तक इस देश में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था, कि

क्षत्रियों के अतिरिक्त भी कोई शासन कर सकता है। प्रजा चाहे जिस जाति की हो, वह अपने राज्याधिकारी कुमार को प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, उसकी रक्षा में कितने भी लोगों के प्राण चले जायँ, प्रजा के लोग सब कुछ करने को उद्यत रहते थे। तभी तो महाराणा प्रताप तथा अन्यान्य राजागण वर्षों राज्य-भ्रष्ट होकर इधर-उधर भटकते रहे, किन्तु प्रजा के लोगों ने उनकी सहायता की।

दस्युधर्मी यवनों ने इस देश पर शासन करने के निमित्त आक्रमण नहीं किया था, वे तो धन के भूखे थे। भारतवर्ष के धनवैभव की विश्व भर में ख्याति थी, यहाँ का शासन तो उन्हें अनपेक्षित भाव से हमारी परस्पर की फूट के कारण प्राप्त हो गया। और विदेशी विधर्मी लोगों ने अनुभव किया, कि यदि भारतीय संस्कृति नष्ट कर दी जाय, इन सबको नये इस्लाम सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लिया जाय, तो हमारा शासन स्थायी हो जायगा। अतः उनका समस्त बल भारतीय संस्कृति को नष्ट करने पर लोगों को मुसलमान बनाने पर ही लग गया। उसमें बाधक थे हिन्दु राज्य। अतः उन पर ही विजय पाने के प्रयत्न मुसलिम शासक करते रहे और साथ ही निम्न श्रेणी के हिन्दुओं को वे बलपूर्वक मुसलमान भी बनाते रहे। कुछ सवर्ण हिन्दु भी प्रलोभनों के कारण मुसलमान बन गये।

इस देश में विदेशियों के आक्रमण के पूर्व शुद्ध क्षत्रिय तो बहुत कम रह गये थे। शासन अधिकांश संकरवर्णीय क्षत्रियों के हाथ में था। उस समय में ब्राह्मणों के प्रति जनता तथा राज्य-शासकों का आदर था। उनके त्याग, तप तेज से जनता प्रभावित थी। तभी तो एक चाणक्य ब्राह्मण ने नन्द वंश का नाश कराकर चन्द्रगुप्त को सम्राट् बना दिया। वास्तव में चन्द्रगुप्त तो नाम के

ही राजा थे। यथार्थ राजा तो चाणक्य मुनि ही थे, उन्हीं का शासन चलता था। फिर तो ब्राह्मण स्पष्ट रूप से मन्त्री बनकर राज्य की बागडोर सम्हालने लगे। जब वर्णाश्रम धर्म विहीन मुसलमान शासक आये और उन्होंने ब्राह्मणों की ही नहीं, सनातन वैदिक आर्य वर्णाश्रम धर्म की ही मान्यता समाप्त कर दी। तब तो लोगों को क्षोभ हुआ और उसी काल में गो ब्राह्मण प्रतिपालक मराठों का अभ्युदय हुआ। उस समय बहुत क्षत्रिय संस्कार हीन होकर शूद्रश्रेणी मे आ गये थे। उनको चेतना हुई और स्थान-स्थान पर मुसलिम शासकों के प्रति विद्रोह हुआ। पंजाब में सिक्ख गुरु जो वहाँ के हिन्दुओं के अग्रणी थे, और साथ ही गृहस्थी भी थे, उन्होंने इस्लाम के प्रति खुल्लमखुल्ला विद्रोह किया और बड़े-बड़े बलिदान हुए। तब पंजाब में सिक्ख जाटों का हिन्दु राज्य स्थापित हुआ। मराठों ने दिल्ली के पास तक अधिकार कर लिया। राजस्थान के राजा भी प्रबल हो गये। देश में फिर से हिन्दुओ की प्रबलता हो गयी, किन्तु जनता की आस्था तो दिल्ली के सम्राट् पर थी। अन्यत्र चाहे जिसका राज्य हो, किन्तु जो दिल्ली के सिंहासन पर बैठा है, सम्पूर्ण देश का सम्राट् तो वही कहावेगा। अब तक दिल्ली के सिंहासन को न तो सिक्ख ही ले सके, न राजपूत ही तथा न मराठे ही। यद्यपि मराठे, दिल्ली के समीप तक अपना साम्राज्य स्थापित कर चुके थे। रामगढ़ (अलीगढ़) तथा मेरठ जिले के गढ़मुक्तेश्वर तक उनका अधिकार हो गया था, किन्तु दिल्ली के सिंहासन पर अभी मुगलवंश का ही अधिकार था। देश की पूरी शक्ति हिन्दुओं के हाथों मे आ गयी थी, किन्तु नाममात्र का सम्राट् तो अभी मुगल ही था। मराठों के राजवंश को निर्बल देखकर—शासन की बागडोर पेशवाओं ने ब्राह्मणों ने अपने हाथ में ले ली थी। जैसे नैपाल में ५

सरकार के समस्त अधिकार राणावंश के महामन्त्रियों–३ सरकार वालों–ने ले ली थी। पेशवा मराठा ब्राह्मणों ने बड़ी बहादुरी से शासन की बागडोर सम्हाली और उन्होंने मुसलमान शासकों से डटकर लोहा लिया। तब तक ही एक तीसरी शक्ति इंगलैंड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी उभर आयी। अँगरेज यहाँ शासन करने की इच्छा से नहीं आये थे, वे तो व्यापार करने आये थे। जब उन्होंने हिन्दु मुसलिम शासकों का संघर्ष देखा, तो वे भाँप गये, मुसलिम शासन में दीमक लग गयी है, वह निर्बल हो गया है, हिन्दुओं में एकता नहीं। वे परस्पर में ही लड़ रहे हैं। जाट, राजपूत, मराठे, सिख ये मिल जुलकर कार्य नहीं करते। तब उन्होंने भेदनीति से काम लिया। कभी वे हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलिम शासकों से मिल जाते, कभी मुसलमान शासकों के विरुद्ध हिन्दुओं से मिल जाते। आरम्भ में तो वे स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर सकते थे, कि हम इस इतने बड़े देश के शासक भी हो सकेंगे क्या? किन्तु जब उन्होंने अपनी सुरक्षा के लिये सेना रखनी आरम्भ कर दी और देश के कुछ भाग पर अपना शासन भी स्थापित कर लिया, तब उन्हें आशा हो गयी हम हिन्दु मुसलमानों में फूट डालकर इस देश के शासक बन सकते हैं, और वे अपनी कूटनीति के अनुसार एक प्रकार के शासक बन भी गये फिर भी दिल्ली के सिंहासन के उत्तराधिकारी अभी मुगलवंश के मुसलमान ही माने जाते थे।

उनकी चाल को हिन्दु और मुसलमान दोनों समझ गये। दोनों के स्वार्थ एक हो गये। दोनों ही अँगरेजों को देश का शत्रु समझने लगे। उसी समय सबने मिलकर अँगरेजों के प्रति राज्य-क्रांति की। जिसे 'गदर' की संज्ञा दी गयी। वह राज्यक्रांति असफल रही और ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत को इंगलैंड की महा-

रानी के हाथों बेच दिया। भारत अब ब्रिटेन के अधीन एक उपनिवेश बन गया। बहुत से लोग समझते हैं मुसलमानों से अँगरेजों ने शासन लिया। यह सर्वथा निर्मूल है। मुसलानी शासन तो पूरे देश में समाप्त हो गया था, रामेश्वर से लेकर देहली के समीप तक मराठों का शासन हो गया था। राजस्थान, गुजरात, मध्य भारत के समस्त हिन्दु राजा स्वतन्त्र थे, पहाड़ी राजा सब स्वतन्त्र थे, वहाँ कभी मुसलमानों का प्रवेश ही नहीं था। कश्मीर पंजाब सब सिक्खों के आधीन था। देहली का सिंहासन भी डगमगा रहा था। जो नवाब राज्यपाल बनाकर भेजे गये थे, वे सब स्वतंत्र नवाब हो गये थे। इस प्रकार अँगरेजों ने तो एक प्रकार से हिन्दुओं से ही सत्ता ग्रहण की थी। सन् १८५७ के पश्चात् प्रायः समस्त देश अँगरेजों के आधीन हो गया था। हजार के लगभग राजा महाराजा स्वतन्त्र कहे जाते थे, किन्तु उन सब पर भी अँगरेजों का अंकुश था, वे राज्य प्रबन्ध में भी स्वतन्त्र नहीं थे, दूसरों से लड़ाई तो कर ही नहीं सकते थे। नेपाल हिन्दु राज्य अवश्य स्वतन्त्र था। गोरखों ने यहाँ तक किया कि इधर तो विहार में गोरखपुर, मुजफ्फरपुर, दरभंगा के समीप तक जनकपुर तक अपना अधिकार जमा लिया। उधर पहाड़ में अलमोड़ा, टिहरी, सिरमौर आदि के राजाओं को जीतकर नैनीताल, अलमोड़ा, सिरमौर, टिहरी गढ़वाल की पूरी रियासतें बद्रीनाथ तक उनके राज्य में आ गया। उधर तिब्बत का भी कुछ भाग नैपाल ने जीत लिया। अब अंगरेजों ने शनैः-शनैः पैर फैलाने आरम्भ किये। उन्होंने बहुत बड़ी फौज रख ली। छोटे-छोटे राजाओं से संधियाँ आरंभ की। अपनी फौजों को किराये पर उठाने लगे। उस समय राजक्रान्ति का काल था, जिसके पास पैसा होता, दो-चार सहस्र सैनिक रखकर लूट पाट करके धन एकत्रित कर लेता।

किसी छोटे मोटे राजा को हराकर उसके राज्य पर अधिकार जमा लेता। उस समय सैन्यबल ही सबसे बडा बल माना जाता, कुछ गुसाईं साधुओं ने भी सशस्त्र सेना बना रखी थी, वे भी कभी हिन्दुओं की ओर से लडते कभी मुसलमान नवाबों से भी धन पा जाते तो हिन्दुओं से भी लड जाते। ऑंगरेजों के सेना भी थी और सुशिक्षित तथा सर्व साधनसम्पन्न थी। जो रियासतें उनके अधीन थीं उनमें राजा के मर जाने पर वे उसका उत्तराधिकारी नहीं बनाते थे, उसे ऑंगरेजी राज्य में मिला लेते थे। एक हिन्दु राजा से दूसरे हिन्दु राजा को लडवा देते। एक का पक्ष लेकर लडते। जब जीत जाते तो उसके राज्य का आधा भाग सैनिक व्यय के नाम से ले लेते। जैसे गोरखों ने टिहरी गढवाल, सिरमौर की बडी-बडी रियासतों को अपने राज्य में मिला लिये। इन राज्यों के उत्तराधिकारी अल्पवयस्क थे। जब वे प्राप्तवयस्क हुए तो ऑंगरेज इनकी ओर से गोरखों से लडे। गोरखों को भगा दिया। तो सैनिक व्यय के नाम से भागीरथी और अलकनन्द के उत्तर का राज्य तो ऑंगरेजों ने सैनिक व्यय के नाम से ले लिया। गंगा और अलकनन्दा का दूसरा तट टिहरी वालों को कुछ शर्तों पर दे दिया। तभी से दो गढवाल हो गयीं। ऋषीकेश स्वर्गाश्रम से बद्रीनाथ तक ब्रिटिश गढवाल और मुनि की रेती से टिहरी गंगोत्री तक टिहरी गढवाल हुई। इसी प्रकार सिरमौर राज्य हरिद्वार तक था। उसका भी आधा भाग ले लिया। देहरादून मसूरी ये सब गोरखों पर थे। ऑंगरेजों ने उन्हें भी ले लिया उधर गोरखपुर नौतनवा, बुटबल तक नैपालियों का राज्य था, उन पर भी गोरखपुर के डिप्टी कमिश्नर ने अधिकार कर लिया। पीछे बुटबल को तो गोरखों ने छीन लिया, शेष रह गये। इस पर शनै-शनैः ऑंगरेजों का पूरी भारतभूमि पर अधिकार हो गया। अन्तिम पेशवा

को जीतकर उसे महाराष्ट्र से लाकर कानपुर के पास विठूर में रखा। सन् ५७ की राज्यक्रांति में विठूर के पेशवा का पूरा हाथ था। किन्तु समय के पहिले क्रांति हो जाने से सब कार्य असफल हो गया। पूरे देश पर अँगरेज छा गये।

उन दिनों अँगरेजों के ग्रह नक्षत्र उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए थे। शनैः-शनैः सवा डेढ सौ छोटे बडे देश अँगरेजों के अधीन थे। कहावत थी, अँगरेजों के राज्य में कभी सूर्य अस्त नहीं होता था। महारानी विक्टोरिया के पश्चात् सप्तम एडवर्ड गद्दी पर बैठे उस समय मे ब्रिटिश साम्राज्य उन्नति की चरम-सीमा पर था, उनके पुत्र जार्ज पचम के समय से पुनः भारत मे तथा अन्यान्य देशों मे स्वातन्त्र संग्राम आरम्भ हुए। उसी बीच जर्मन युद्ध आरम्भ हुआ। हम लोग नित्य ही सुनते थे, भारत मे अब जर्मन आये, तब आये। हम लोग अँगरेजों से ऊब गये थे। आरम्भ में जब महारानी विक्टोरिया ने यह घोषणा की, कि किसी के भी धर्म मे सरकार हस्तक्षेप न करेगी, सबको अपनी अपनी मान्यता के अनुसार पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता है। इस घोषणा से सहस्र वर्ष से धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये जूझते रहने वाले हिन्दुओं को प्रसन्नता हुई। वे मुसलिम शासकों के नित्य के अत्याचारों से ऊब गये थे, इसीलिये उन्होंने अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई देखकर अँगरेजी शासन का स्वागत किया।

हिन्दुओं को जितना अपना धर्म प्यारा था, उतनी स्वतन्त्रता प्यारी नहीं थी। उनके ऊपर शासन कोई भी करें, इसमें उन्हें तनिक भी आपत्ति नहीं थी, किन्तु कोई उनके धर्म मे हस्तक्षेप करता है, उनकी वश परम्परागत सामाजिक व्यवस्था में हेर-फेर करता है, इसे वे नहीं सह सकते थे। शासन का उन्हें लोभ नहीं था, "कोउ नृप होहि हमे का हानी।" यही उनका मन्त्र था,

किन्तु धर्म उन्हे प्राणों से प्यारा था, धर्म के लिये वे बड़े से बड़ा बलिदान करने को सदा सन्नद्ध रहते। ससार के इतिहास मे हिन्दुओं ने अपने धर्म की रक्षा मे जितने बलिदान किये हैं, उतने दूसरी किसी जाति मे मिलना असम्भव है। उनका यह दृढ़ मत था "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः" जिसने धर्म को छोड दिया है, उसे धर्म भी छोड देता है और जिसने धर्म की रक्षा की है, वह सुरक्षित धर्म सदा धार्मिक पुरुप की रक्षा ही करता रहता है। अँगरजो ने जब धर्म स्वातत्र की घोपणा कर दी, तब हिन्दुओं ने उन्हे अपना त्राता तथा रक्षक समझा। किन्तु जब उन्होंने अनुभव किया, कि यह तो केवल घोपणा मात्र है। अँगरेज भीतर ही भीतर प्रकारान्तर से यही चाहते हैं, कि सब लोग ईसाई हो जायँ। ईसाइयत का प्रचार-प्रसार करने को उन्होंने ईसाई मिसनरियों को भाँति-भाँति की सुविधा दे रखी थीं, गोहत्या पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता, तथा वस्त्रों आदि मे गौ की चर्बी का प्रयोग किया जाता है। तब तो वे अँगरेजी राज्य के विरुद्ध हो गये। हिन्दुओ के उच्च जाति के लोग मेधावी थे। सरकारी नौकरियों मे उनकी ही प्रधानता थी। अँगरेज चाहते थे हिन्दु मुसलमान तथा हिन्दुओं मे उच्चनीच के भेदभाव पैदा करके हम अपने राज्य को स्थिर रखें। इसीलिये, आदिवासी, पिछडी जाति आदि के भेद पैदा किये गये। मुसलमानों में शिक्षा बढाने को मुसलिम विश्वविद्यालय अलीगढ मे बनाया गया। सब प्रकार के भेदभाव पेदा किये गये। धार्मिक झगडे भी आरम्भ किये गये। मुसलमानों को सरकार की ओर से विशेष सरक्षण दिया गया। देश मे हिन्दुओं की बहुसख्या होने पर भी हिन्दु और अहिन्दु न कहकर मुसलिम और गैर मुसलिम शब्द प्रचलित किया गया। अर्थात् हिन्दुओं का नाम निशान ही मिटा दिया गया। वे हिन्दु

न कहकर गैर मुसलिम कहे जाने लगे। मुसलमान सब अँगरेजों के पक्ष मे हो गये। कुछ भले मुसलमान राष्ट्र का भी पक्ष लेते थे, वे राष्ट्रीय मुसलमान कहलाते थे, किन्तु उनकी सख्या उँगलियों पर गिनने योग्य थी।

जब देश मे स्वातन्त्र सग्राम छिडा, तब यह कोई स्वप्न मे भी आशा नहीं करता था, कि इस देश से अँगरेज चले जायँगे। अँगरेजो का आतङ्क देश मे इतना व्याप्त था, कि कोई अनुभव भी नहीं कर सकता था, कि भारतीयजन अँगरेजों के बिना शासन चला सकेंगे। उस समय स्वतन्त्रता का अर्थ इतना ही था, कि देश ब्रिटिश शासन क अधीन ही रहे, किन्तु भारतवासियों को शासन विशेष मे अधिकार प्राप्त हो। अर्थात् भारत इगलैंड का उपनिवेश बना रहे। अँगरेज इतना भी देने को तेयार नहीं थे। वे भारतीयों को शासन के अयोग्य ही मानते थे। वे कहते थे—पहिले हम तुम्हें शिक्षित बनाकर शासन करना सिखावेंगे फिर शनै-शनै अधिकार देते जायँगे। कब देंगे, कितने दिन मे देंगे, इसका कोई निश्चय नहीं। पहिले औपनिवेशिक स्वतन्त्रता की माँग थी, फिर ज्यों-ज्यों स्वातन्त्र्य भावना जागृत होने लगी, त्यों-त्यों माँग बढते बढते पूर्ण स्वतन्त्रता तक पहुँच गयी।

अँगरेजो ने सन् ५७ का विद्रोह गोली के बल पर दबाया था। उस समय अँगरेजों के पैर उखड गये थे। बहुत स्थानों से अँग-रेज भाग गये थे प्रयागराज के किले पर ही ३ दिनों तक एक मोलवी साहब का अधिकार हो गया था, किन्तु पीछे अँगरेजी फौजों ने इतना भारी दमन किया, गॉव के गॉव तोप लगाकर जला-कर भस्म कर दिये। लोगों को खुले मैदान मे पेड़ो पर लटकाकर फॉसियॉ दी जाने लगीं। इतने दमन के कारण लोग भयभीत हो

गये। विद्रोह दब गया। अँगरेजों का साहस बढ गया। फिर से उन्होंने अपना राज्य जमा लिया।

अबके भी वे दमन द्वारा स्वातन्त्र्य आन्दोलन को दबाना चाहते थे। अधिकाश मुसलमान और पूँजीपति अँगरेजों के साथ थे। कुछ भले मुसलमान और देशभक्त पूँजीपति स्वतत्रता के पक्ष मे थे। कांग्रेस मे गरम दल और नरम दल दो दल हो गये थे। गरम दल वाले चाहते थे, जैसे बने तेसे अँगरेजों से शीघ्रतापूर्वक शासन छीन लें। नरम दल वाले—जिनमे अधिकाश वकील आदि थे, वे चाहते थे वधानिक उपायों से शनैः-शनैः अँगरेजो को प्रसन्न रखते हुए अधिकार प्राप्त करें। तब तक गाँधीजी महात्मा नहीं हुए थे। वे एक आन्दोलनकारी अपने स्वत्व के लिये लडने वाले कर्मवीर वेरिस्टरमात्र ही थे। दक्षिण अफ्रीका मे वे प्रवासी भारत-वासियों के अधिकारों के लिये लड रहे थे। यहाँ के समाचारपत्र उन्हें "कर्मवीर मोहनदास कर्मचन्द गाँधी" के नाम से छापते थे। वहा उन्हे सफलता मिली और वे भारत आये। एक गुजरात के राजा के राजवैद्य ने अपने अभिनन्दन पत्र में उन्हे महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी लिखा। तभी से वे महात्मा गाँधी हो गये।

हिन्दु लोगो की दृष्टि मे धर्म ही सब कुछ था। धर्म के नाम पर उनसे चाहे जो कुछ करालो। उनके मेलों का, उत्सवों का, यात्राओं का, पर्वों का, संस्कारों का तथा सभी कृत्यों का सम्बन्ध धर्म से ही है। धर्म के लिये वे मर मिटने को, सर्वस्व त्यागने को तत्पर रहते थे। धार्मिक एकता ने ही अब तक हिन्दुओं को जीवित रखा है। कहीं का भी हिन्दु क्यों न हो, वह पृथ्वी के किसी भी कोने पर जाकर क्यों न बस गया हो, वह अपने संकल्प मे नित्य पढेगा "जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे

पुण्यक्षेत्रे" आदि-आदि। इस एकता का ऐसा प्रभाव हुआ कि वह हिन्दु चाहे हिमालय के केदार, कश्मीर, जालंधर, कूर्मांचल अथवा नेपाल इन खण्डों मे रहता हो अथवा समुद्र तट के जगन्नाथ, रामेश्वर अथवा द्वारका मे रहता हो। अथवा विदेशो में किसी भी द्वीप मे रहता हो, कोई भी भाषा बोलता हो, वह अपने को भारत माँ का पुत्र समझेगा, गंगा, हिमालय उसके पूज्य देवता होंगे। इस धार्मिक एकता ने हमारी कड़ियो को जोड़ रखा था। और धर्म के सम्बन्ध से हम सब एक थे। साधु-संत, संन्यासी महात्मा ये धर्म के ठेकेदार थे। इनके लिये हमारे हृदयों मे बड़ी श्रद्धा थी। जब गांधीजी महात्मा बन गये, केवल नाम के ही महात्मा नहीं बने, सचमुच उन्होंने एक लँगोटी धारण करके सिर पर चोटी रखाकर महात्माओं का वेष भी धारण कर लिया, तब तो हिन्दुओं की उनके ऊपर श्रद्धा उमड़ पड़ी। और वे सबके माननीय बन गये।

दक्षिण अफ्रीका से आकर गाँधीजी कहीं अपना कार्यक्षेत्र बनाना चाहते थे, उन्हे स्वप्न मे भी यह आशा नहीं थी, कि मैं इतने बड़े भारत देश मे इतना लोकप्रिय बन सकूँगा। पहिले तो वे महात्मा मुंशीलाल (पीछे से स्वामी श्रद्धानन्दजी) द्वारा स्थापित गुरुकुल कागड़ी मे रहना चाहते थे, वह उन्हें अनुकूल न पड़ा, फिर वे कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्वभारती मे रहने गये,वह भी अनुकूल न पड़ी तो उन्होंने अहमदाबाद में अपना ही एक आश्रम बनाया। पहिले उसका नाम ऋषि आश्रम, स्वराज्य आश्रम रखना चाहा, अन्त मे वह साबरमती आश्रम के ही नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महात्मा गाँधी की ख्याति तो विशेष रूप से जलियाँ वाले बाग के सन १६१६ के कांड से हो हुई। अँगरेज सरकार ने एक

रौलट एक्ट बनाया जो काला कानून के नाम से विख्यात हुआ। उसके विरोध में स्थान-स्थान पर सभायें हुईं। लाहौर के जलियाँ वाले बाग में भी सभा हुई। उस समय पजाब के राज्यपाल ओडायर थे और सैनिक अधिकारी डायर था। ओडायर की सम्मति से डायर ने जो वह नर सहार किया वह अद्वितीय था। बगीचे के दरवाजों को बन्द करके स्त्री, पुरुप, बच्चे, वृद्धे जो भी थे सभी को गोलियों से भून दिया और तब तक भूनते रहे जब तक सैनिकों की समस्त गोलियाँ समाप्त नहीं हो गयीं। निरीह, निशस्त्र, असावधान जनता पर ऐसा सहार शासकों ने कम ही किया होगा। उस सहार के कारण ही नादिरशाही की भाँति डायरशाही अर्थात् अत्याचार और अन्याय की पराकाष्ठा प्रसिद्ध हुई।

उसी समय गाँधीजी लाहौर जा रहे थे, मैं उन दिनों मथुरा मे पढता था। हमने सुना कर्मवीर मोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी अमुक गाडी से लाहौर जा रहे हैं। उस समय गाँधीजी इतने प्रसिद्ध नहीं थे। उनके दर्शनों को जनता टूट पडती नहीं थी। अँगरेजों का उन दिनों बडा भारी आतक था। अँगरेजों के विरुद्ध कोई एकान्त में भी धीरे-धीरे बातें करता, तो लोग कहते—"भैया, ऐसी बातें मत करो, दीवालों के भी कान होते हैं, वे भी सुनकर राज्य के अधिकारियों से कह सकती हैं। इससे कोई राज्यद्रोह की न तो बातें ही करता, न राजद्रोह करने वालों से सम्पर्क ही रखता। विशेपकर हमारे सस्कृत के विद्यार्थी तो ऐसी बातों से सर्वथा विरत ही रहते। वे दो ही काम जानते थे क्षेत्रों मे जाकर भोजन कर आना और अपनी पुस्तकों को रटते रहना। इसके अतिरिक्त उनके लिये ससार में कुछ भी होता रहे—"कोउ नृप होहु हमहिं का हानी" उन्हें न ऊधो का लेना न माधो का देना। अपने काम

से काम। अतः उन्होंने तो इसे अनसुनी कर दिया। मेरे मन में बडा कुतूहल था, जिस महापुरुष ने विदेशों में दीन भारतीयों का पक्ष लेकर इतने कष्ट सहे हैं, उनका दर्शन तो कर लें। अतः मैं पैदल ही सम्मिलित (जङ्कसन) स्टेशन पर पहुँचा। और भी १०० । ५० आदमी आये थे, किन्तु मैं सबसे पहिले पहुँचा। गाड़ी आई तो मैं डिब्बे मे सबसे पहिले पहुँचा। जहाँ तक मुझे स्मरण है गाँधीजी तृतीय श्रेणी के डिब्बे में बैठे थे। वे काठियावाड़ी पगडी बाँधे थे और काठियावाडी देहाती किसान जिस प्रकार की कमर तक की तनीदार अँगरखी पहिनते हैं, वैसी अँगरखी पहिने थे। सबसे पहिले मैंने हाथ बढ़ाया। उन्होंने दोनो हाथों से हँसते हुए मेरे हाथों को पकड़कर अभिवादन किया। सर्वप्रथम गाँधीजी के मथुरा स्टेशन पर दर्शन हुए। फिर बहुत से और भी लोग आ गये। *गाँधीजी ने कुछ कहा—क्या कहा; यह मुझे याद नहीं है।* थोड़ी देर पश्चात् गाड़ी चल दी। मथुरा से चलकर मेल आदि वेग से चलने वाली गाडियाँ परवल स्टेशन पर ही रुकती हैं। परवल गुड़गाँव जिले में है। उन दिनों गुड़गाँव पंजाब प्रान्त में ही था। पंजाब सरकार का गाँधीजी को आदेश मिला कि वे पंजाब में प्रवेश नहीं कर सकते। उनके न मानने पर राज्य कर्मचारियों ने उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध उतारकर एक डिब्बे में अंजन लगाकर न जाने कहाँ ले गये।

जब यह समाचार देश में फैला तब सर्वत्र दुकानें बंद कर दीं और स्थान-स्थान पर सभायें हुईं, प्रदर्शन हुए। जीवन में सर्वप्रथम इतना भारी प्रदर्शन मथुरा में ही देखा।

यह तो मेरे इस संस्मरण की भूमिका मात्र है। अब कैसे और किन परिस्थियों मे मुझे राजनैतिक आन्दोलन में आना पड़ा, इन सब बातों को पाठक आगामी खण्डो में पढ़ेंगे। यह भूमिका

आवश्यकता से अधिक बड़ी हो गयी किन्तु विषय विवेचन के पूर्व इतना प्राक्कथन आवश्यक था, इसीलिये इस विषय को कुछ विस्तार के साथ बताना पड़ा। शेष अब आगे के खण्डों में।

छप्पय

परहितमहँ नित निरत विपति पर निज सम माने।
काहू को अपमान होहि ताकूँ निज जाने॥
दीन दुखी सत दलित जाहि सबने ई त्याग्यो।
जो ताकूँ अपनाय वही अति प्रभु प्रिय लाग्यो॥
सहे सकल सहात जग, करत रहत कल्यान नित।
सन्त वही भगवन्त सम, होवै तिनितैं जगतहित॥

नचिकेता का तृतीय वर (३)

[१७]

नैषा तर्केण मतिरापनेया
प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि
त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥*
(के० उ० १ अ० २ व० ६ मं०)

छप्पय

जो मति तुमकूँ मिली तर्क तैं दुरलभ सो है।
चाहैं तुम सम शिष्य सत्यधृति प्रष्टा जो है॥
नाचिकेत जो अग्नि सकामक भोगनि देवै।
वे पावें फल नित्य जाहि निष्कामहिँ सेवे॥
गूढ़ गुहाहित गहनवन- वासी पुरुष पुरान नहिँ।
धीर पुरुष तिहि पाइकें, हरष शोक तजि अनुभवहिँ॥

---

* हे प्रियतम पुत्र ! जो मति तुम्हें प्राप्त है, वह तर्क द्वारा प्राप्त होने वाली नहीं है। अपने आप नहीं गुरु द्वारा कहा हुआ उपदेश ही आत्मज्ञान में निमित्त कारण होता है, वास्तव में तुम सत्यधृति वाले परम धैर्यवान हो। बेटा नचिकेता हम लोग जो उपदेश देने वाले गुरु लोग हैं, उनकी हार्दिक अभिलाषा यही होती है, कि तुम्हारी जैसी बुद्धि वाला प्रश्नकर्ता शिष्य हम लोगों को मिला करे।

गुरु शिष्य का सम्बन्ध इतना मधुर और सर्वोत्तम है, जितना पिता पुत्र का भी नहीं है। पिता तो वीर्य आधान कर्तामात्र है, वह जो भी उपदेश करेगा, इस लोक के सुख सम्बन्धी ही करेगा। पिता तो पत्नी में वीर्याधान करता है, अर्थात् उससे प्रत्यक्ष सबंध नहीं परम्परया सम्बन्ध है, किन्तु गुरु से तो प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, वह स्वयं ही प्रत्यक्ष शिष्य के कान द्वारा मन्त्रोपदेश करता है। पिता तो इस लोक के भोगों की प्राप्ति का ही उपदेश देगा, किन्तु सद्गुरु तो परलोक को परिपुष्ट कर देगा, पिता से तो शरीर का ही सम्बन्ध है, किन्तु गुरु तो परम आत्मीय है उसका तो शिष्य से आत्मा का सम्बन्ध है, अतः सद्गुरु ही सच्चा पिता, माता, उपदेष्टा तथा इहलोक और परलोक का सुखदाता है।

जैसे प्रत्येक सद्गृहस्थ की हार्दिक इच्छा होती है, कि मुझे सत्पुत्र प्राप्त हो, उसी प्रकार प्रत्येक सत्गुरु सत्शिष्य की प्राप्ति के लिये लालायित रहता है। शिष्य को तो अपने में सत्पात्रता लाने की आवश्यकता है। सत्पात्रता आ जाने पर शिष्य को सत्गुरु की खोज नहीं करनी पड़ती। सद्गुरु ही सदा सुपात्र शिष्य को खोजते रहते हैं। जैसे व्याकरण के पंडित आधी मात्रा की बचत–लाघव–हो जाने पर पुत्रोत्सव के सदृश प्रसन्नता मनाते हैं, जैसे अपुत्री पुत्र पाकर परम प्रमुदित होता है, उसी प्रकार सद्गुरु सुपात्र सत्शिष्य को पाकर फूला नहीं समाता। वह सत्शिष्य की प्राप्ति से अत्यन्त ही प्रसन्न हो जाता है। संसार में वे गुरु परम भाग्यशाली हैं, जिन्हें कोई सत्शिष्य मिल जाता है। सत्शिष्य ही तो संसार में गुरु के गौरव को बढ़ाता है, वही तो अपने गुरु की कमनीय कीर्ति का दशों दिशाओं में प्रसार-प्रचार करता है। गुरु की महत्ता सत्शिष्य के द्वारा ही प्रकट होती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब नचिकेता ने तर्क द्वारा सिद्ध

की हुई वस्तु को ही प्रमाण मानने को कहा, तब धर्मराज ने अत्यन्त ही प्रेम प्रदर्शित करते हुए नचिकेता से कहा—"देखो, वत्स! तुम मेरे अत्यन्त ही प्रियतम हो, प्रेष्ठ हो, प्रेमास्पद हो। तुम परम श्रद्धावान् हो, परमार्थप्रिय हो, श्रद्धालु, जितेन्द्रिय तथा विषयलम्पटता से सर्वथा रहित हो। ऐसी बुद्धि सब किसी को प्राप्त नहीं हुआ करती। जिन्होंने अनेक जन्मों में शुभकर्मों का अनुष्ठान किया है, उन्हीं की बुद्धि तुम्हारी भाँति विमल होती है। तुम्हें जो श्रद्धायुक्त अहैतुकी बुद्धि प्राप्त हुई है, वह तर्क के द्वारा किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकती।"

नचिकेता ने कहा—"भगवन्! सत्यधृति पारमार्थिक मति कैसे प्राप्त होती है?"

धर्मराज ने कहा—"वत्स! जब पूर्वजन्म के पुण्यों का उदय हो जाय, जब भगवत् कृपा से किन्हीं महापुरुष का—सद्गुरु का—सत्सङ्ग प्राप्त हो जाय, उनके चरणों के समीप बैठकर निरन्तर भगवत् कथा-परमार्थ विवेचन श्रवण करने का सुयोग मिल जाय, तभी ऐसी सुन्दर निष्ठा-आत्मज्ञान के प्राप्त करने की ललक-प्राप्त होती है।"

नचिकेता ने पूछा—"इसकी पहिचान क्या है कि इसे परमार्थ सम्बन्धिनी बुद्धि प्राप्त हो गयी है।"

यमराज ने कहा—"परमार्थ संबन्धी बुद्धि अधीर पुरुषों को—जो तनिक से दुःख में घबड़ा जायँ, तनिक से प्रलोभन में आ जायँ—उन्हें प्राप्त नहीं होती। उत्तम बुद्धि धैर्यवान पुरुषों को ही प्राप्त होती है। हे नचिकेता! इनके उदाहरण तुम ही हो। तुम वास्तव में सत्यधृति-श्रेष्ठ धैर्य वाले हो। तुम अध्यात्मविद्या के अधिकारी हो। तुम्हारे जैसे उत्तम बुद्धि वाले-संसारी विषयों से निरत वैराग्यवान् शिष्य मिल जायँ, तो वक्ता को-आचार्य को-

परम प्रसन्नता होती है। हम लोगों की सदा यही हार्दिक इच्छा बनी रहती है, कि हमसे प्रश्न पूछने वाले कुपात्र न हों। तुम्हारे सदृश सुपात्र ही प्रश्न पूछने वाले मिलें, जिससे हम इस परम दुर्लभ अध्यात्मविद्या का हर्ष के साथ उन्हें देते रहें।"

नचिकेता ने कहा—"भगवन्! एक बात मैं और पूछना चाहता हूँ।"

धर्मराज ने कहा—"हाँ, पूछो।"

नचिकेता ने कहा—"ये संसारी पदार्थ नित्य हैं या अनित्य।"

धर्मराज ने कहा—"संसार के जितने भी पदार्थ हैं, सब अनित्य है।"

नचिकेता ने पूछा—"तब अनित्य पदार्थों से जो फल की इच्छा से कर्म किये जायँगे, वे कर्म और उनके फल भी अनित्य ही होंगे?"

धर्मराज ने कहा—"इस बात को मैं भली भाँति जानता हूँ, कि अनित्य पदार्थों द्वारा जो कर्म फल की अभिलाषा से किये जायँगे, वे कर्म तो अनित्य होंगे ही, उनके फल भी अनित्य, क्षयिष्णु तथा बन्धनकारक होंगे।"

नचिकेता ने कहा—"तब आपने मुझे इष्टिका चयन, अग्निहोत्र आदि अग्निविद्या का उपदेश क्या दिया? जब आप मुझे अध्यात्मविद्या का अधिकारी समझते थे, तब ऐसी कर्मफल रूप-निधि-शेवधि-जो अनित्य है, संसार को ही प्राप्त कराने वाली है, उसको मेरे प्रति क्यों कहा और उस अग्नि को भी आपने मेरे ही नाम से प्रसिद्ध करने का वरदान क्यों दिया?"

धर्मराज ने कहा—"देखो, भैया, कर्मों का फल क्रियाओं के अधीन नहीं होता, भावना के अधीन होता है। अपनी परम सुन्दरी पुत्री है, सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर-सोलह

शृङ्गार करके विदा होकर अपनी ससुराल जा रही है, आकर अपने पिता से लिपट जाती है, पिता भी उसे अपनी अंक में भर-कर रोते-रोते उसकी चोटी को भिगो देता है, वहाँ वात्सल्य रस उत्पन्न हो जाता है। ठीक वैसे ही सज-धजकर अपनी धर्मपत्नी आलिंगन करती है। वहाँ शृङ्गार रस का उदय होता है। देखने में दोनों की क्रियायें एक-सी ही हैं, किन्तु भावना के अनुसार उनका फल पृथक्-पृथक् होता है। इसी प्रकार अग्निविद्या की बात है। मैंने स्वयं नाचिकेत-अग्नि के चयनादि रूप से यज्ञादि कर्म किये हैं और मैं इस रहस्य को भली-भाँति जानता भी हूँ, कि हवि आदि अनित्य साधनों द्वारा–नित्य जो परब्रह्म परमात्मा हैं उनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अनित्य पदार्थों द्वारा तो अनित्य भोगों की ही प्राप्ति होगी, फिर चाहे वे कितनी भी महान् क्यों न हों। फिर भी मैंने ये सब कर्म निष्कामभाव से–केवल प्रभु प्रीत्यर्थ–ही किये। इसीलिये मैं अनित्य द्रव्यों द्वारा नाचिकेत अग्नि का चयन करता हुआ भी नित्य जो परब्रह्म परमात्मा हैं, उनको प्राप्त हो गया हूँ। मेरी गणना उन बारह पुरुषों में हो गयी है जो भागवत धर्म के पूर्ण ज्ञाता माने जाते हैं। जैसे शरीर तो अनित्य ही है। इसी शरीर द्वारा नित्य परमात्मा को साधक प्राप्त कर ही लेते हैं। इसी प्रकार निष्काम भाव से अग्निहोत्र करने पर अनित्य इस लोक या स्वर्गलोक के भोग ही प्राप्त नहीं होते, कैवल्य मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है और कुछ अधिकार की भी छिपी इच्छा रही हो, तो अधिकार पदों का उपभोग करने के अनन्तर मुक्ति प्राप्त होती है। तुम भी यदि निष्काम भाव से नाचिकेत अग्नि की उपासना करोगे, तो अनित्य भोगों के नहीं परमपद के अधिकारी बन जाओगे। यदि संसारी भोगों के चाक-चिक्य में फँसकर उन्हें प्राप्त करने के लिये अधीर हो जाओगे, तो

यहीं पृथ्वी और स्वर्ग इन्हीं मे भटकते रहोगे। ऊपर नहीं बढने पाओगे। उस परमपद को धीर ही प्राप्त कर सकते है।"

नचिकेता ने पूछा—"धीर किसे कहते हैं ?"

धर्मराज ने कहा—"देखो, वत्स! वेदों म कर्मकाण्ड की ही प्रशसा ह। यज्ञादिक जितने कर्म हैं, सब स्वर्ग की ही कामना से किये जाते ह ज्ञानमार्ग की ऋचाओं से २२-२३ गुनी कर्मकाड की ऋचायें हैं। जिनमे यज्ञ द्वारा स्वर्ग प्राप्ति बतायी गयी हे। स्वर्ग मे समस्त प्रकार के भोगा की प्राप्ति बतायी गयी है। स्वर्ग को जगत की प्रतिष्ठा, यज्ञ को चिरस्थायी फल देने वाले स्वर्ग का कारण, स्वर्ग को ही अभय की अवधि शुभ कर्मों द्वारा ही स्तुति करने योग्य महत्व पूर्ण स्वर्ग का निवास बताया हे। वेदों में स्वर्ग की भूरि भूरि प्रशसा की गयी है। समस्त वेद स्वर्ग के गुणगान से ओतप्रोत हैं। बार बार कहा गया है, अमुक कर्म से अक्षय स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है। उस स्वर्ग के अक्षय कहलाने वाले सुखा को में तुम्हे दे रहा था, किन्तु इतन प्रलोभन देने पर भी तुमन धीरता धारण करके उनका परित्याग कर दिया। धीर के ये ही लक्षण हैं, जा स्वर्गीय सुखा की महत्ता, प्रतिष्ठा तथा सर्वश्रेष्ठता जानकर भा उनके प्रति उदासीन हो जाय, इनके प्रलोभन मे न फँसे। मेरी बुद्धि म ये सभी गुण तुममें हैं। स्वर्ग के समस्त सुख प्राप्त होने पर भी तुमने उनकी इच्छा नहीं की, अत निश्चय ही तुम धीर हो। विकार के हेतु भूत विषयों के प्राप्त होने पर भी जिसका मन विचलित न हो वही वास्तव मे धीर है।"

हाथ जोडकर नचिकेता ने नम्रतापूर्वक कहा—"भगवन्! में धन्य हुआ, मैं कृतार्थ हो गया, जो मेरे ऊपर आप जसे ज्ञान स्वरूप गुरु प्रसन्न हुए अब कृपा करके मुझे उन परात्पर प्रभु पर ब्रह्म की कुछ महिमा बताने की कृपा करे।"

धर्मराज ने कहा—"बेटा, नचिकेता! वह परब्रह्म गूढ़ तत्त्व है। वह अणु, परमाणु सब में समान भाव से व्याप्त है। वह सब की हृदयरूपी गुहा में बैठा हुआ है। वह भयरूपी अटवी में निवास करता है। अर्थात् जगतरूप होकर विद्यमान है। वह नूतन नहीं है पुराना है। कितना पुराना है इसका कोई अनुमान भी नहीं कर सकता इसीलिये उसे पुराणपुरुष कहकर पुकारते हैं।"

नचिकेता ने पूछा—"भगवन्! जो योगमाया के पर्दे में छिपा रहता है, जो निगूढ़ है, जिसे कोई देख नहीं सकता, जो खुले भवन में न छिपकर एकान्त गुफा में छिपकर बैठा है और जो गहन वन में छिपकर विचरता रहता है, उस ब्रह्म को कौन पा सकता है?"

धर्मराज ने कहा—"भैया! कह तो दिया उसे विषय अलोलुप धीर पुरुष ही प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।"

नचिकेता ने पूछा—"उसे प्राप्त कर लेने पर साधक की स्थिति कैसी हो जाती है?"

धर्मराज ने कहा—"जो धीरपुरुष अध्यात्म योग प्राप्ति के द्वारा उसे भली प्रकार समझ लेता है। वह हर्ष में न तो फूलकर कुप्पा ही हो जाता है और न शोक में विह्वल होकर रुदन ही करने लगता है। वह हर्ष, शोक दोनों का परित्याग करके कृतार्थ हो जाता है। हर्ष, शोक दोनों के भाव विनष्ट हो जाते हैं।"

नचिकेता ने कहा—"भगवन्! हर्ष और शोक जो ये द्वन्द्व हैं इन्हें छोड़ने पर सूक्ष्म तत्त्व ज्ञाता की स्थिति कैसी होती है?"

धर्मराज ने कहा—'अध्यात्म योग के द्वारा प्राप्त होने वाला जो यह तत्त्व है, इस धर्ममय तत्त्व के उपदेश को श्रवण करके जो इसे सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर लेता है, तथा उसका भली-भाँति निमर्श करता है, और विवेकपूर्वक विचार करके इस अणु परब्रह्म तत्त्व का अनुभव कर लेता है, वह परम प्रमुदित हो जाता है। क्योंकि वह मोदनीय है आनद स्वरूप है, सच्चिदानन्द-मय है, उसे जानकर तद्रूप हो जाता है उस आनन्द सागर में तन्मय हो जाता है, निमग्न हो जाता है। वह सबसे श्रेष्ठ परम धाम है। उससे बढकर कोई श्रेष्ठ धाम नहीं।

नचिकेता ने पूछा—"प्रभो! वह धाम मुझे किस प्रकार प्राप्त हो?"

हँसकर धर्मराज ने कहा—"बेटा, नचिकेता! अरे, भैया! तुम्हारे लिये तो उस सद्म का–उस परम धाम का–द्वार सर्वथा खुला हुआ है। तुम तो जब चाहो उसमें प्रवेश कर सकते हो, मेरी ऐसी मान्यता है।"

नचिकेता ने कहा—"आपके कथनानुसार वह परब्रह्म पर-मात्म तत्त्व धर्म और अधर्म दोनों से अन्यत्र है अर्थात् धर्माधर्म से रहित है और इस कार्य कारण रूप जगत् से भी भिन्न तथा भूत, भविष्यत्, वर्तमान त्रिविध काल से भी परे है। उस तत्त्व के आप ज्ञाता है, उसका साक्षात्कार आपने किया है, उसे आपने देखा है। कृपा करके मुझे भी उसका उपदेश दीजिये। उसके सम्बन्ध मे आप मुझसे कहे।"

धर्मराज ने कहा—"बेटा! वह तत्त्व वाणी का विषय नहीं। उसका वर्णन विस्तार से करना असम्भव है। फिर भी मैं तुम्हें बहुत ही संक्षेप मे केवल एक ही शब्द मे उसका उपदेश करता हूँ। वह एकाक्षर पद ऐसा है, कि सम्पूर्ण वेद उसी एक अक्षर का

विस्तार मात्र है। समस्त वेद इसी पद का पुनः-पुनः प्रतिपादन करते हैं। संसार के समस्त ऋषि, महर्षि इसकी प्राप्ति के निमित्त भाँति-भाँति के कठोर तप करते हैं। अर्थात् जो पद सम्पूर्ण तपों का एकमात्र लक्ष्य है, सबका आधार है। ब्रह्मचारीगण जिसकी प्राप्ति के निमित्त ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हैं, वही एकाक्षर पद उस परब्रह्म परमात्मा का वाचक है।"

नचिकेता ने पूछा—"उस परब्रह्म परमात्मा का वाचक वह पद कौन-सा है ?"

धर्मराज ने कहा—"वह एकाक्षर ब्रह्मवाचक पद ॐ है। जिसे प्रणव भी कहते हैं। नचिकेता! यह प्रणव ही वेदों का सार है। यह एक अक्षर ही ब्रह्म है। यही अक्षर परमपद है। इसी एक अक्षर के भाव को जानकर साधक कृतार्थ हो जाता है। वह वही हो जाता है, उसे निरतिशय आनन्द की प्राप्ति हो जाती है।

नचिकेता ने कहा—"उस निरतिशय आनन्द का आलम्बन क्या है ?"

धर्मराज ने कहा—"भैया! मैंने कह तो दिया। यह प्रणव रूप ओंकार ही श्रेष्ठ आलम्बन है, यही परम आलम्बन है। इस आलम्बन को जानकर जीव ब्रह्मलोक में गौरवान्वित होता है। उसकी महिमा ब्रह्म के लोक वैकुण्ठ में गायी जाती है। यह ॐ ही आत्मा तथा परमात्मा का प्रतीक है।"

नचिकेता ने पूछा—"भगवन्! अब मैं आत्मा के स्वरूप को जानना चाहता हूँ, कृपया मुझे आत्मा का स्वरूप बतावें ?"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! ब्रह्म के वाचकप्रणव के सम्बन्ध में बताकर अब जैसे नचिकेता के पूछने पर यमराज ने आत्मा के स्वरूप का वर्णन किया है, उस प्रसंग को मैं आगे वर्णन

करूँगा। यह प्रसंग अन्यन्त ही गूढ़ है। अतः इसे आप सब बड़ी सावधानी के साथ श्रवण करने की कृपा करें।"

छप्पय

नर जिहि सुनि अरु समुझिसु दित हौं तुम तिहि पाओ।
पूछें द्विज सुत—"आयु ब्रह्मविद ब्रह्म बताओ॥
वही ब्रह्म परब्रह्म प्रणव वाचक करि अनुभव।
वेद बतावें जाइ करें जिहि हित तप व्रत सब॥
आलम्बन अति श्रेष्ठ यह, परमालम्बन कहहिँ मुनि।
ओं नाम जपि ब्रह्म लहि, गौरवशाली होहिँ पुनि॥

नचिकेता का तृतीय वर (४)

[१८]

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥*

(क० उ० १ अ० २ व० २३ मन्त्र)

छप्पय

जनम मरन नहिँ नित्य आतमा अजन पुरातन ।
नहीं मरै तन मरत न मारै जरै न सँग तन ॥
सूछम तैं हू सूक्ष्म बड़े तैं बड़ो कहावै ।
प्रभु प्रसाद तैं वीतराग जानैं जनवावै ॥
थिर हू जावै दूरि अति, शयन करत दशदिशि चलत ।
समद अमद नहिँ हरप है, अमद मद्य मम सम भनत ॥

सर्वसाधारण जीवों को तो संसार के भोग ही प्रिय लगते हैं, वे भोगों की प्राप्ति के ही निमित्त सतत प्रयत्नशील रहते हैं। आत्मानुसंधान करने वाले तो कोई विरले ही भगवत् कृपापात्र पुरुष होते हैं। वे साधारण जीव नहीं होते। वे अनुग्रह सृष्टि के

---

* यह आत्मा प्रवचन से प्राप्त नहीं होता। न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त होता है। जिसे आत्मा वरण कर लेता है, वही उसे प्राप्तकर सकता है। उसी के लिये यह परमात्मा अपने शरीर को प्रकट करता है।